१.२

ओ३म्

श्री रूपसीभाई करमणभाई पोपट की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

वैदिक विचार माला का पुष्प संख्या - ४

सुसंस्कारी - सन्तान

लेखक

वैदिक मिशनरी कमलेशकुमार आर्य अग्निहोत्री

प्रकाशक

श्री चुनीलालभाई रूपसीभाई पोपट

प्लॉट नम्बर ६५/६६, वार्ड १० बी.सी. इफ्को कॉलोनी के सामने,

आर्यसमाज मार्ग, गांधीधाम-कच्छ ३७०२०१

कृपया : यह पुस्तिका आप स्वयं आद्योपान्त पढ़िये और अन्य अधिकाधिक व्यक्तियोंको भी अवश्य पढ़वाइये ।

पुनरावर्त्तन

सरल भाषा और मण्डनात्मक शैली में विभिन्न विषयों पर मेरे द्वारा लिखित १०१ पुस्तकें १३ मार्च १९९७ को निर्मित **"वैदिक लेखमाला प्रकाशक न्यास"** मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान) की ओर से बारम्बार प्रकाशित और भारतवर्ष के अनेकानेक नगरों - ग्रामों तथा कुछ बाहर के देशों में निःशुल्क प्रेषित एवं वितरित की गईं उन्हें सर्व कल्याणकारी **सत्य सनातन वैदिकधर्म** प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में अत्यन्त उपयोगी माना गया । यह जानकारी प्रबुद्ध पाठकों से प्राप्त कर मैं अति उत्साहित हुआ, किन्तु कतिपय कारणों से इस 'न्यास' का समन्वय २ मई २००८ को विश्व प्रसिद्ध **"पतञ्जलि योगपीठ हरिद्वार न्यास"** में कर दिया गया । तब सम्बन्धित सत्साहित्यप्रेमियों को बहुत निराशा हुई । तत्पश्चात् -

५ से ९ जनवरी २०११ तक गुजरात प्रान्त के बनासकांठान्तर्गत **भाभर** नामक कस्बे में सम्पन्न हुए **'यजुर्वेद पारायण बृहद् यज्ञ'** के अवसर पर मैं प्रचारार्थ रहा । तब वहाँ के निवासी आर्यश्रेष्ठी **श्री अशोकभाई चुनीलालभाई पोपट** ने अपने श्री पूज्य दादा जी **रूपसीभाई करमणभाई पोपट** की पुण्यस्मृति में उन पुस्तकों के प्रकाशन और विभिन्न स्थानों पर प्रेषित करने का व्यय भार स्वीकारते हुए उन्हें **"वैदिक विचार माला"** के नाम से पुनः प्रकाशित करवाते रहने की इच्छा व्यक्त की । अतः मैंने उन पुस्तकों का प्रकाशन कार्य आरम्भ करवा दिया है, जिनको पढ़ कर अनेकों नर नारी आचारण से वैदिकधर्मानुयायी बने, यह सम्बन्धित महानुभाव भलीभाँति जानते हैं ।

स्वाध्यायप्रेमी सज्जनो ! आपको यह विदित ही है कि आज की अधिक व्यस्ततावाले इस युग में अधिकांश व्यक्ति बड़ी पुस्तकों को पढ़ने के लिये समय नहीं निकाल पाते और क्लिष्ट भाषा हो तो उसे समझ नहीं पाते । ऐसी स्थिति में ये सरल भाषा में लिखी लघु पुस्तिकाएँ अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं, और होती रहेंगी । मैं हृदय से चाहता हूँ कि ये **'वैदिक विचार माला'** के पुष्प अधिकाधिक हाथों में पहुँचे, जिससे कि धर्म अध्यात्म तथा कर्मकाण्ड आदि से सम्बन्धित व्यात भ्रान्तियों का निवारण हो । मेरे अपने विश्वास के अनुसार इन पुस्तिकाओं को पढ़कर अनेकानेक स्त्री-पुरुष शाश्वत वेदपथ के पथिक अवश्य बनेंगे ।

यह पुस्तक निःशुल्क हम अपने डाक व्यय से आपके पते पर प्रेषित कर रहे हैं । इसे आद्योपान्त पढ़कर आप अपने विचारों से हमें अवगत कीजियेगा । आपके पत्र प्राप्त होते रहेंगे तो आगामी पुष्प भी हम आपको निःशुल्क सादर समर्पित करते रहेंगे -

लेखक

गृहस्थ के गौरव

सुसंस्कारी - सन्तान

मनुष्य के अतिरिक्त संसार में जितने भी प्राणी हैं उनको ईश्वर उनकी आवश्यकतानुसार स्वाभाविक ज्ञान प्रदान कर देता है । केवल मानव तनधारी प्राणियों के लिये ही नैमेत्तिक ज्ञान की आवश्यकता होती है । यह जानकर वैदिक ऋषियों ने हमारे लिये संस्कारों का विधान किया, क्योंकि **संस्कार विहीन व्यक्ति अपने जीवन का समुचित विकास नहीं कर सकते ।**

युगप्रवर्तक **महर्षि दयानन्द** सरस्वती जी महाराज ने **सत्यार्थप्रकाश** के द्वितीय सम्मुलास का आरम्भ करते हुए लिखा है, **माता-पिता और आचार्य उत्तम हों तो ही मनुष्य ज्ञानवान होता है** । शास्त्रकारों ने मनुष्य का प्रथम गुरू माता को ही माना है, गर्भ से लेकर ५ वर्ष की आयु तक माता, ८ वर्ष की आयु तक पिता तत्पश्चात् आचार्यादि द्वारा मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति होती है । वैसे पूर्वजन्म के सञ्चित शुभाशुभ संस्कारों का प्रभाव एवं समाज का वातावरण भी मानव के उत्थान-पतन में सहायक हुआ करता है ।

संस्कारों की उपयोगिता

हमारा अपना चिन्तन यह है कि वर्त्तमान में भूमण्डल पर मनुष्य के लिये जीवनोपयोगी आवश्यक संसाधनों - सुविधाओं का तनिक भी अभाव नहीं है । यदि समृद्धिशाली राष्ट्राधिकारी मानवीय दृष्टिकोण अपना कर **वितरण व्यवस्था को दोष मुक्त करदे** तो धरती का प्रत्येक मनुष्य अन्न, धन, वस्त्र एवं आवासादि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कर सकता है । कमी तो केवल मानव कहलाने वाले प्राणियों में मानवीय गुणों की है ।

अपनी सन्तानों को डॉक्टर, इञ्जिनीयर, प्रोफेसर, वकील आदि बनाने के अभिलाषी माता-पिता यदि इन्हें सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने की ओर भी ध्यान दें तो इस अभाव की पूर्ति हो सकती है । आज मानव निर्माण के नाम पर जो (प्रयास किये जा रहे हैं, उनमें सफलता न मिलने का कारण बाल्यकाल में **सुसंस्कारों का अभाव** ही है । माता-पिता की असावधानी का उनकी सन्तानों पर कितना दुष्प्रभाव होता है, यह आज के अधिकांश व्यक्ति नहीं जानते । जैसे कुशल शिल्पज्ञ तथा चित्रकार सुन्दर (आकर्षक) मूर्तियाँ एवं चित्र बना दिया करते हैं, वैसे ही सुयोग्य माता-पिता सुसंस्कारी सन्तानों को उत्पन्न कर सकते हैं ।

संस्कारों की महत्ता

वैदिक मान्यतानुसार जीवात्मा को अपने कृतकर्मों के फल तो अवश्य भोगने पड़ते हैं, किन्तु यदि पुरुषार्थ किया जावे तो जन्म-जन्मान्तरों से सञ्चित संस्कारों में परिवर्तन हो सकता है । इसीलिये हमारे ऋषियों ने संस्कारों पर विशेष बल दिया है ।

जैसे बुद्धिमान उद्योगपति उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करता है जिनकी बाजार में माँग होती है । वैसे ही भूमण्डल पर जिन प्रवृत्तियों से युक्त मनुष्यों की आवश्यकता होती है उसकी पूर्ति करना प्रत्येक सद्गृहस्थी का कर्तव्य है ।

इच्छित सन्तान प्राप्त करने की प्रक्रिया का नाम **गर्भाधान संस्कार** है । यह प्रथम संस्कार सम्पन्न करने से पूर्व परिवार, समाज राष्ट्र और विश्व की अवस्था का अध्ययन कर उपयुक्त निर्णय लेना होता है । जैसे हर दृष्टि से सुविधा जनक, सुखदायी, सुन्दर और सुदृढ़ भवन का निर्माण करने से पूर्व बहुत सोच विचार कर नक्शा तैयार किया जाता है, वैसे ही सन्तान के आगमन से पूर्व आदर्श दम्पति अपनी मनःस्थिति बनाया करते हैं ।

पुंसवन और **सीमन्तोन्नयन** संस्कारों के माध्यम से माता अपने गर्भस्थ बालक के शारीरिक विकास का समुचित ध्यान रखते हुए उसे उत्तम संस्कारों से युक्त करती है । **गर्भस्थ शिशु पर उसकी माँ के द्वारा किये जा रहे दर्शन, चिन्तन-मनन, भोजन एवं व्यवहार आदि का बहुत प्रभाव हुआ करता है ।** अतः गर्भवती स्त्री को स्व संकल्प के अनुसार सर्वदा विशेष सावधान रहने की अत्यन्त आवश्यकता है ।

अपने बालक को ब्राह्मण बनाने की इच्छा रखनेवाली माँ को धर्मशास्त्रों का स्वाध्याय, साधना, तप-त्यागमय जीवन तथा सात्विक आहार आदि अपनाना चाहिये । क्षत्रिय स्वभाव से युक्त सन्तानों के लिये माता को शूरवीरों - योद्धाओं का इतिहास पठन, वीरता पूर्ण दृश्य राजसी भोजन आदि स्वीकारना अनिवार्य है । इसी प्रकार वैश्योचित कर्म और गुणों के अनुसार व्यवहार करते हुए वैश्य प्रवृत्ति वाले सन्तान उत्पन्न किये जा सकते हैं । माँ को अपने शयन कक्ष में चित्र भी लिये गये संकल्प के अनुसार ही लगाने चाहिये ।

गर्भवती स्त्री के लिये दिन में शयन, रात में अधिक जागरण, खारे, खट्टे, तीखे, कड़वे आहार एवं रेचक (दस्तावर) ओषधियों का सेवन, क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष, लोभादि दोष अत्यन्त हानिकारक होते हैं । गिलोय, ब्राह्मी आदि दूध के साथ लेने, सदैव प्रसन्नचित्त तथा पूर्ण संयम से रहनेवाली माता का गर्भस्थ बालक स्वस्थ-सबल एवं मेधावी होता है ।

जातकर्म संस्कार के समय नवजात शिशु को वेद सुनाने एवं आस्तिकता युक्त मधुर वाणी का अभ्यास कराने तथा **नामकरण** संस्कार द्वारा अपनी सन्तानों का सुन्दर और सार्थक नाम रखकर उन्हें वैसा ही बनाने का उत्तरदायित्व पिता सहर्ष स्वीकारता है ।

निष्क्रमण संस्कार का उद्देश्य बालकों को सामाजिक वातावरण में प्रवेश कराना है । माता-पिता को चाहिये वे अपनी सन्तानों को गलत स्थानों पर एवं दुष्ट व्यक्तियों के पास न जाने दें । कहते हैं साँप का विष केवल एक जन्म में ही हानि पहुँचाता है, किन्तु **दुर्जन दोष का प्रभाव संस्काररूप में जन्म-जन्मान्तरों तक साथ रहता है** । अतः बालकों का लालन-पालन धर्मात्माओं, ईश्वरोपासकों के सानिध्य में ही होना हितकर है ।

अन्नप्राशन संस्कार भक्ष्याभक्ष्य का ज्ञान कराता है । युगप्रवर्तक **महर्षि दयानन्द** विरचित **संस्कारविधि** के अनुसार बालक के लिये सर्वप्रथम मधु, दही, घृत (घी) और उबले हुए चावल ही सेवनीय हैं । आयुर्वेद सम्मत इस सुपथ्य का बालक के शरीर, मन, बुद्धि पर उत्तम प्रभाव होता है । जो माता-पिता अपनी सन्तानों को शारीरिक क्षमता, ऋतु तथा प्रकृति के अनुकूल दूध, मक्खन, दही, मधु, फल सब्जियाँ और अन्नादि का आहार देते हैं वे निश्चय ही पूर्ण स्वस्थ-निरोग, तेजस्वी, मेधावी प्रतिभा सम्पन्न एवं दीर्घजीवी होते हैं । इसके विपरीत जिन बालकों को नादान माता-पितादि के द्वारा पौष्टिक भोजन (विटामिन) के नाम पर अण्डे, मछली, मांसादि अभक्ष्य पदार्थ खिलाये जाते हैं, वे बालक कालान्तर में विलासी (राक्षसी) प्रवृत्ति वाले होकर संसार में अशान्ति के कारण बनते हैं, **जैसा कि आज हम प्रत्येक्ष देख रहे हैं** ।

दाँत निकलते समय बालकों को होने वाले कष्ट की अनुभूति कम करने में जहाँ **चूड़ाकर्म संस्कार** सहायक होता है वहाँ उन्हें यह संस्कार कृत्रिमता से सर्वथा रहित स्वाभाविक जीवन जीने की प्रेरणा भी देता है । जो सादगी के महत्व को न जान अपने बच्चों को बाल्यावस्था से ही फैशनेबल बना कर उन्हें पतन के मार्ग पर धकेल देते हैं, ऐसे माता-पिता इस संस्कार की उपयोगिता अवश्य समझें ।

कर्णवेध संस्कार के माध्यम से पिता अपने बालक को सदैव भद्रवचन सुनने का उपदेश करता है । इसलिये कि बाल्यकाल में सुने हुए शब्दों का मानस पर अमिट प्रभाव होता है । भावी जीवन के उत्थान-पतन में सुने गये शब्द कितना महत्व रखते हैं यह इस संस्कार से जाना जा सकता है । इसके अतिरिक्त वैदिकयुग में हमारा राष्ट्र आर्यावर्त वैभव सम्पन्न था, यहाँ हीरे, पन्ने, मोती, सोने-चाँदी आदि बहुमूल्य पदार्थ सबको सर्वदा सुलभ थे । केवल श्रृङ्गार नहीं अपितु स्वास्थ्य के लिये सहायक इन रत्नों तथा धातुओं को धारण करने में भी यह संस्कार सहायक होता है । कालान्तर में हम पुनः उस वैभव (ऐश्वर्य) को प्राप्त कर सकते हैं । अतः इस संस्कार की उपेक्षा नहीं होनी चाहिये ।

व्रती जीवन में सहायक **यज्ञोपवीत संस्कार** के अवसर पर बालक **अग्नि का व्रत** = सदैव ऊपर उठने अर्थात् निरन्तर उन्नति करने, **वायु का व्रत** = प्रगति पथ पर बढ़ते रहने, **सूर्य का व्रत** = तेजस्वी प्रकाशमान होने, **चन्द्रमा का व्रत** = सोम्य स्वभाव युक्त, आह्लादकारी बन सदा स्वयं प्रसन्नचित रहते हुए औरों को सुख पहुँचाने एवं **व्रत पति परमात्मा** = के न्याय नियमों को आचरण से स्वीकारने का संकल्प लेता है ।

तीन धागों से बने इस **व्रतसूत्र** को अपने आचार्य द्वारा हृदय से ग्रहण करते समय बालक **देव**, **ऋषि** और **पितृऋण** से उऋण होने की प्रतिज्ञा करता है, एवं **ईश्वर**, **जीव**, **प्रकृति** (अनादि तीन पदार्थों), **ज्ञान**, **कर्म**, **उपासना**, प्रकृति के **सत**, **रज**, **तम** तीन गुणों, शरीर के **वात**, **पित**, **कफ** तीन दोषों आदि को जानने के लिये प्रयत्नशील होता है ।

यज्ञोपवीत संस्कार की उपयोगिता ठीक से जानने वाले ही इससे लाभान्वित हो सकते हैं । आज अधिकांश व्यक्ति इस संस्कार की उपेक्षा कर रहे हैं, या फिर केवल औपचारिकता मात्र

निभाते हैं । यही कारण है कि मानव जीवन को उत्कृष्ट एवं पवित्र बनाने में सहायक इस संस्कार से सम्बन्धित लाखों यज्ञोपवीत (व्रतसूत्र) धारी-वर्त्तमान में बीड़ी, भाँग, गाँजा, तम्बाकू आदि दुर्व्यसनों तथा बँगाल, कशमीर आदि प्रान्तों में मांसाहार तक का सेवन कर रहे हैं ।

प्राचीन समय में यज्ञोपवीत धारण करते समय **ब्राह्मण** का बालक = **अज्ञान, अविद्या, अन्धविश्वास**, क्षत्रिय का बालक = **अन्याय-अत्याचार** एवं **वैश्य** का बालक = **अभाव् आदि** को दूर करने का व्रत ग्रहण करता था किन्तु आज ऐसा नहीं होता है ।

मानव धर्मशास्त्र **मनुस्मृति** के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के बालक का क्रमशः ५, ६ तथा ८ वर्ष एवं गृहसूत्रों में ८, ११, तथा १२ वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत संस्कार करने का विधान है । उपर्युक्त वर्णस्थ बालक १६, २२ और २४ वर्ष की आयु तक यदि **व्रती** न बनें तो उन्हें पतित माना जावे । ऋषियों की इस व्यवस्था को देखते हुए सुसंस्कारी जीवन के लिये यज्ञोपवीत की कितनी अनिवार्यता है, यह सहज ही जाना जा सकता है ।

ज्ञानवान बनाने के उद्देश्य से पिता अपनी सन्तानों को गुरुकुल में प्रवेश कराते समय उन्हें जो उपदेश देता है, वह मानव जीवन की सफलता और सार्थकता के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है । पिता उस समय अपने बालक को कहता है-तू **ब्रह्मचारी** है, नित्य सन्ध्योपासना, भोजन से पूर्व आचमन, विद्याध्यन में पूर्ण पुरुषार्थ, आचार्य का धर्मानुसार आदेश एवं अनुशासन का पालन किया करना, तथा दिन में शयन, क्रोध, मिथ्याभाषण, श्रृङ्गार, स्त्री दर्शन, नृत्य, अति निद्रा, अति जागरण, अति भोजन, अति स्नान, रुक्ष और रेचक पदार्थों का सेवन इत्यादि तुम्हारे लिये सर्वथा वर्जित है ।

वेदारम्भ संस्कार के प्रसंग में **महर्षि मनु** को उधृत करते हुए

देव दयानन्द स्व निर्मित **संस्कार विधि** में लिखते हैं -ब्रह्मचारी अपनी सभी ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों एवं मन पर पूर्ण नियन्त्रण रख योगाभ्यास से शरीर को थोड़ा कष्ट दे अपने प्रयोजनों को सिद्ध करे ।

गर्भाधान से अन्त्येष्टि पर्यन्त १६ संस्कारों में-से उपर्युक्त ११ संस्कार अधिकतम १२ से २४ वर्ष की आयु तक सम्पन्न करने होते हैं, इससे संस्कारों की महत्ता स्वतः सिद्ध हो जाती है । इन संस्कारों के अतिरिक्त स्व सन्तानों के उज्जवल भविष्य की कामना करने वाले माता-पिता को निम्न सावधानियाँ रखना भी बहुत आवश्यक है ।

माता-पितादि के व्यवहार का सन्तानों पर प्रभाव

आरम्भ में सर्वाधिक विश्वसनीय एवं सम्माननीय समझे जानेवाले माता-पिता कालान्तर में अपने बालकों के लिये अविश्वास तथा उपेक्षा के पात्र अपनी असावधानी और दूषित प्रवृत्ति के कारण ही हुआ करते हैं । इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को बहुत कम व्यक्ति जानते हैं ।

स्मरण रहे ! परस्पर लड़ने-झगड़ने, रूठने, कटुभाषा का प्रयोग करने तथा एक दूसरे को झूठा और अयोग्य बताने वाले दम्पतियों के प्रति उनकी सन्तानों का श्रद्धाभाव समाप्त हो जाता है, यह निर्विवाद सत्य है । अतः **अपने बालक-बालिकाओं को सुसंस्कारी बनाने की इच्छा रखनेवालों का जीवन-व्यवहार आदर्श होना अनिवार्य है ।**

सम्भवतया यह बात सामान्य - सी लगे किन्तु गहराई से विचार करने पर ज्ञात होता है कि माता-पिता के व्यवहार का सन्तानों पर अमिट प्रभाव हुआ करता है । उदाहरणार्थ-छोटे बालक कभी-कभी चाकू, माचिस आदि ऐसी वस्तुओं को उठा

लेते हैं, जो उनके लिये हानिप्रद हो सकती हैं । ऐसी स्थिति में नादान माता-पितादि अपने बच्चों के हाथ से वह वस्तु छीन कर उसे पीछे छिपाते हुए उन्हें भ्रमित करने के लिये कहते हैं, वह बन्दर ले गया अथवा कौआ ले गया इत्यादि... जबकि वहाँ बन्दर या कौआ आदि होते नहीं है । इस व्यवहार का बालकों के सूक्ष्म मन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है । वे अपने माता-पिता की बातों पर सन्देह करने लगते हैं । माता-पितादि को चाहिये अपनी सन्तानों के समक्ष कभी असत्य न बोलें । उनके हाथ से कोई वस्तु छुड़ाना हो तो उनको उससे होने वाली हानि बता कर उसे लेने का प्रयास करें । इतने पर भी यदि बालक उस वस्तु को न देना चाहें-हठ करें रोने लगें तो चिन्ता न करें वह वस्तु उनसे जबरन ले लेवें । कहते हैं - 'गाते गन्धर्व और रोते बालक का कुछ भी नहीं बिगड़ता' ।

जहाँ पति-पत्नी एक दूसरे का सम्मान तथा यशोगान करते हैं, उस गृहस्थ की सन्तानें निश्चय ही आज्ञाकारी और श्रेष्ठ होती हैं । इर्ष्या-द्वेष, घृणा, निन्दा तथा अपशब्दों का उच्चारण जैसे दोष एवं शिष्टता, विनम्रता, मधुर वचन आदि सद्गुण अधिकांशतः सन्तानों को अपने माता-पितादि से विरासत में ही मिला करते हैं । यदि माता-पिता अपने बालक/बालिकाओं को शिष्टाचार के आवश्यक नियम सिखावें, उन्हें धर्म तथा अध्यात्म सम्बन्धी यथायोग्य जानकारी देवें और भूत-प्रेत, डायन, जादू-मन्त्र आदि की भय उत्पन्न करने वाली भ्रामक बातें न कह कर वीरों के चरित्र सुनावें तो वे उत्तम संस्कारों से युक्त होकर **गृहस्थ के गौरव** बन सकते हैं ।

आज जो यह शिकायत सुनने में आती है कि वर्त्तमान पीढ़ी अत्यधिक उच्छृङ्खल-निरंकुश और पथभ्रष्ट होती जा रही है । इसका मूल कारण है माता-पितादि संरक्षकों की अनभिज्ञता एवं स्व कर्त्तव्यपालन के प्रति उदासीनता । यह सत्य है कि जन्म-

जन्मान्तरों से साथ लेकर आये शुभाशुभ संस्कारों के परिणामस्वरूप भी मनुष्य श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट होता है । किन्तु माता-पितादि के रहन-सहन, खान-पान, आचरण-व्यवहार का प्रभाव भी सन्तानों पर अवश्य होता है, यह नहीं भूलना चाहिये ।

कहते हैं एकबार लक्ष्मण ने श्रीराम से पूछा-'संसार में ऐसा कौन मनुष्य है जिसका मन कञ्चन (सुवर्ण) और कामिनी (सुन्दर स्त्री) को देखकर चलायमान नहीं होता ? तो श्री राम ने उत्तर दिया **'जिसकी माता पतिव्रता तथा पिता सदाचारी हो, उसके मन में पराये धन और पर स्त्री को देख कर कभी विकार नहीं आता ।'**

माता-पिता के जीवन-व्यवहार, आचरण का सन्तानों पर प्रभाव अवश्य होता है । आज अधिकांश दम्पति पुरातन परम्पराओं से सम्बन्धित नहीं हैं । आप विचार कीजिये वर्त्तमान में इस धराधाम पर कितने ऐसे गृहस्थी हैं जो **श्री राम** तथा **श्री कृष्ण** के पदचिह्नों पर चलते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन विधिवत करते हैं ?

माता-पिता का उत्तरदायित्व

धर्म अध्यात्म (त्याग, तप, संयम) तो आज अधिकांश परिवारों से विदा हो गया; और पाप-पाखण्ड, अन्धविश्वास के साथ विषय वासनाओं की पूर्ति में सहायक साधन प्रवेश पा चुके हैं । ऐसी स्थिति में सुसंस्कारी सन्तानों के दर्शन दुर्लभ नहीं होंगे तो क्या होगा ? जो दम्पति सिनेमा, टेलीविजन के पर्दे पर गन्दे चलचित्र देखें तथा कामवासनाओं को भड़काने वाला साहित्य पढ़ें, अण्डे, मछली, मांसादि अभक्ष्य पदार्थों एवं बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, गाँजा, भाँग, शराब, आदि दुर्व्यसनों का सेवन करें, वे अपनी सन्तानों को सुसंस्कारी बना ही नहीं सकते ।

आज संसार में मानव देहधारी प्राणी ही अशान्ति के कारण बने हुए हैं इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है ? । ईंट-पत्थरों को एकत्रित करके यदि कोई यह कहे कि हम प्रगति कर रहे हैं तो हमारी दृष्टि में वे वास्तविकता से बहुत दूर हैं । कितना बड़ा आश्चर्य है, भवन विशाल बन रहे हैं और हृदय संकीर्ण होते जा रहे हैं । मार्ग तो अच्छे बनाये जाते हैं पर चलने वाले पथभ्रष्ट हो रहे हैं । विद्युत का प्रकाश ज्यों-ज्यों बढ़ रहा है त्यों-त्यों अज्ञानान्धकार फैलता जा रहा है ।

अन्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करनेवालों के राष्ट्रों में अनेक व्यक्ति रोटी के लिये तरसते हैं (उन्हें भर पेट भोजन नहीं मिल पाता) एक ओर वस्त्र-उद्योग फूलता-फलता जा रहा है तो दूसरी ओर कई मनुष्यों को तन ढकने के लिये फटे-पुराने चिथड़े भी उपलब्ध नहीं हो पा रहे । ये और ऐसे अनेक प्रमाण इस बात की पुष्टि करते हैं कि आज के मानव उत्तम संस्कारों से युक्त नहीं हैं । अतः वर्त्तमान में सर्वप्रथम और सर्वोपरि आवश्यकता भूमण्डल पर मानवता के रक्षक मानवों की है । यदि प्रत्येक माता-पिता इस ओर विशेष ध्यान दें तो संसार में पुनः सुख-शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है ।

राष्ट्र की बागडोर जिनके हाथों में आती है, जो विभिन्न महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त होते हैं, वे किसी माता-पिता की सन्तानें ही तो हैं । यदि सुसंस्कारी बालक बड़े होकर आचार्य, अध्यापक, उपदेशक, सेनापति, सैनिक, प्रहरी, व्यापारी, कृषक, उद्योगपति, पशुपालक तथा सेवक आदि हों तो मानवता का बहुत बड़ा हित होता है । **संस्कार विहीन एवं कुसंस्कारियों के कारनामें तो आज सर्वत्र दिखाई दे ही रहे हैं** । इस दुरवस्था को परिवर्तित करने के लिये सन्तानों को सुसंस्कारों से युक्त करना ही होगा, अन्य कोई उपाय नहीं है ।

इतिहास साक्षी है इस धराधाम पर सुसंस्कारों से वञ्चित अथवा कुसंस्कारी मानव तन धारी प्राणी ही अशान्ति के कारण बने हैं । उत्तम संस्कारों के अभाव का परिणाम वर्त्तमान में हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं । आज अधिकांश परिवार और राष्ट्र अशान्ति से ग्रसित, सुसंस्कारों की उपेक्षा के कारण ही हो रहे हैं । हमारा विश्वास है जब तक मूल की भूल का सुधार नहीं होगा तब तक अपेक्षित सफलता प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है । अतः प्रत्येक **माता-पिता अपनी सन्तानों को सुसंस्कारी अवश्य बनावें,** हम यह हृदय से चाहते हैं ।

जीवात्मा का भविष्य, वह जिसके गर्भ में प्रवेश करता है उस माता पर बहुत कुछ निर्भर है । शास्त्रकारों ने माँ को ही प्रथम गुरु माना है । हमारे ऋषियों ने गर्भ में स्थित जीवात्मा के लिये **पुंसवन** और **सीमन्तोन्नयन** संस्कारों का विधान किया, तत्पश्चात्, माता की गोदी में रहने तक सन्तान के लिये **जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म** और **कर्णवेध** संस्कार आवश्यक बताये । इससे प्रमाणित होता है कि माँ का सन्तति निर्माण में कितना महत्वपूर्ण योगदान है । संस्कृत के किसी कवि ने माता को निर्मात्री कहा है । अर्थात् जन्म देने वाली **जननी** और निर्माण करने वाली को **माता** कहकर पुकारा है । संसार के किसी अन्य प्राणी का निर्माण करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उन्हें परमात्मा की व्यवस्था से आवश्यक ज्ञान स्वतः ही प्राप्त हो जाता है । किन्तु मनुष्य को बिना निमित्त के आवश्यक जानकारियाँ नहीं हो सकती ।

मानव अन्तःकरण पर शुभाशुभ संस्कार सर्व प्रथम माता के द्वारा ही अंकित हुआ करते हैं । अतः मनुष्य तन धारी को

सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने के लिए माँ का विदुषी होना परमावश्यक है । माता के जीवन, व्यवहार, आचरण, चिन्तन, दर्शन, श्रवण तथा आहारादि का उसकी सन्तानों पर प्रभाव अवश्य पड़ता है । विलासिता प्रिय माता की सन्तान, संयमी-सदाचारी, एवं कायर माँ की सन्तान, वीर-साहसी कभी नहीं हो सकती । आज अधिकांश माता-पिता अपने पुत्र-पुत्रियों के जीवन व्यवहार से सन्तुष्ट नहीं है, इसका प्रमुख कारण है माँ की असावधानी । अपवाद स्वरूप यदि किसी मूर्खा माता की सन्तान कभी श्रेष्ठ हो जाय तो यह उसके अपने पूर्वजन्मों के सुसंस्कारों का परिणाम ही मानना चाहिये, वैसे तो माँ के संस्कार ही प्रबल हुआ करते हैं ।

आज भूमण्डल पर वैदिकयुग की भाँति शास्त्रोक्त विधि से सन्तति निर्माण की ओर ध्यान नहीं दिया जाता, इसीलिये मानवता का ह्रास हो रहा है ।

जो विदुषी नारियाँ हैं उन्हीं के द्वारा हर स्त्री को स्व कर्तव्य कर्म का ज्ञान प्राप्त करना हितकर है । नारी समुदाय जिनके सम्पर्क में रहे अथवा जिनसे शिक्षा प्राप्त करे, उन स्त्रियों को भौतिक और आध्यात्मिक अर्थात् लोक-परलोक सम्बन्धी यथार्थ ज्ञान हो, तथा उनका आचरण पवित्र, जीवन सरल एवं सात्विक हो, यह आवश्यक है ।

कुमारी कन्याओं को देश, काल, परिस्थिति के अनुसार सावधान करते हुए विदुषी मातायें उन्हें ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थधर्म की आवश्यक जानकारियाँ दें । इसलिये कि गृहस्थ जीवन की अनभिज्ञता के कारण अनेक युवतियाँ भयंकर भूलें कर उनके दुष्परिणामों को भोगती हैं ।

हमने जब से होश सम्भाला तब से प्राप्त संस्कारों के अनुसार ही अपना जीवन व्यतीत किया और कर रहे हैं । शास्त्रकार प्राथमिकता माता को इसीलिये देते हैं कि सर्वप्रथम संस्कार माँ के द्वारा ही प्राप्त होते हैं, और संसार का दर्शन भी माता ही कराती है । सुसंस्कारों की रक्षार्थ वैदिकयुग में प्रत्येक विदुषी नारी सद्विचारों का प्रचार किया करती थी । सीता जी को अपने पिता और पति के यहाँ उत्तम वातावरण प्राप्त हुआ था, और वह स्वयं विदुषी थी । फिर भी **महर्षि अत्रि** के आश्रम पर उन्हें **सती अनसूया** ने नारीधर्म का उपदेश दिया ।

वैदिककाल के हमारे पूर्वज वेदाज्ञा का पालन कर्त्तव्य भावना से किया करते थे, किन्तु वर्त्तमान में ऐसा नहीं हो रहा । इसलिये मानव समुदाय अविद्या अन्धकार में भटक रहा है । सचमुच वह युग बहुत अच्छा था, जब विदुषी नारियाँ स्त्रियों को उनके कर्तव्यकर्मों का बोध कराया करती थीं । क्योंकि कुछ ऐसी आवश्यक और उपयोगी बातें हैं, जो नारी ही नारी के समक्ष निःसंकोच होकर कह सकती है । अतः अनुभवी सुयोग्य महिलाओं को वैदिक मान्यताओं के आधार पर स्त्री शिक्षा का कार्य अवश्य करना चाहिये । हम अनुभव पर बल इसलिये दे रहे हैं कि पुस्तक में पढ़कर अथवा किसी से सुनकर जो जानकारियाँ प्राप्त की जाती हैं उनसे व्यवहार द्वारा की गई अनुभूति अधिक विश्वसनीय और प्रमाणिक हुआ करती है । अर्थात् जिसने दाम्पत्य जीवन का अनुभव एवं सन्तानोत्पत्ति जैसा पुण्यकर्म किया हो, जिसे सास, ननद, देवरानी-जेठानी के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो, वह गृहस्थ सम्बन्धी यथार्थ जानकारियाँ दे सकने में सर्वथा समर्थ होती है-

लेखक



सर्वकल्याणकारी सत्य सनातन वैदिकधर्म के प्रति पूर्ण आस्थावान



श्री रूपसीभाई करमणभाई पोपट

श्रीमती पूराबहिन रूपसीभाई पोपट

प्राप्त जानकारी के अनुसार श्री रूपसीभाई करमणभाई पोपट का जन्म माघ शुक्ल पञ्चमी विक्रम संवत् १६४८ को नगर पारकर जिला थर पारकर के एक सुप्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ । आपकी आजीविका का साधन व्यापार व्यावसाय रहा । आप आरम्भ से ही गो सेवक और परोपकार प्रिय रहे । आपने स्वतंत्रता आन्दोलन में भी अच्छी भूमिका निभाई । आप सदैव प्रसन्नचित्त रहते थे ।

आर्यसमाज नगर पारकर के वार्षिकोत्सव में हिमाचल प्रदेश से पधारे श्री पूज्य स्वामी कृष्णानन्द जी के प्रवचनों से प्रभावित होकर आप विक्रम संवत् १८७६ में आर्यसमाज से जुड़े, और वैदिकधर्म प्रचार-प्रसार के कार्य में तन मन धन से सहयोग करने लग गये ।

भारत विभाजन के पश्चात् आप विक्रम संवत् २००४ को गुजरात प्रान्त के बनासकांठान्तर्गत भाभर नामक कस्बे में सपरिवार आकार बसे, और वहाँ विक्रम संवत् २०१५ को आर्यसमाज की हुई स्थापना में आपने अपना पूर्ण योगदान दिया । अपने सरल स्वभाव, आत्मीय व्यवहार एवं सेवाभाव से आपने बहुत यश पाया । अपने दोनों होनहार सुपुत्रों सर्व श्री लवजीभाई एवं चुनीलालभाई तथा अपनी धर्मपत्नी श्रीमती पूराबहिन को सदैव वेदपथ पर चलते रहने की सत्प्रेरणा प्रदान करते हुए विक्रम संवत् २०१८ को आपने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया ।

श्रीमती पूराबहिन रूपसीभाई पोपट का जीवन सदैव सरल सादगी सेवाभाव एवं परिश्रम प्रिय रहा । आपने अपने श्री पूज्य पतिदेव की सर्व सुविधाओं का पूर्ण ध्यान रखा, और परिवार-कुटुम्ब की समृद्धि में अपना अनुभूत योगदान दिया ।

श्रीमती पूराबहिन ने सम्बन्धित नारी समुदाय के लिये एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करके विक्रम संवत् २०३८ को परलोक गमन किया । ऐसे वैदिक धर्मानुयायी दम्पति को हमारा शत शत नमन - लेखक

प्रेषक
कमलेशकुमार
आर्य अग्निहोत्री
आर्यसमाज मंदिर,
देवलाली बाजार,
कुबेरनगर,
अहमदाबाद
(गुजरात)
पिनकोड ३८२३४०

PRINTED BOOK



प्राप्त कर्ता :